

वर्तमान कालीन संस्कृति के सन्दर्भ में मनुस्मृति की प्रासंगिकता

सारांश

‘संस्कृति’ से तात्पर्य वह शिक्षा-दीक्षा है, जिससे मनुष्य अपनी ‘प्रकृति’ से परिमार्जित होकर उन्नति की ओर अग्रसर हो तथा विकृति से बचा रहे। भारतीय संस्कृति में मानव मात्र के लिए सत्य, शिव और सुन्दर का सन्देश है। मनन करने का विषय है कि आधुनिक भारत की संस्कृति व्यक्तिगत संस्कृति बनती जा रही है, जिसका मुख्य लक्ष्य सांसारिक सुख वैभव का आनन्द उठाना तथा इन्द्रिय-संयम को तिरस्कृत कर स्त्री, सुरा और सम्पत्ति में खोये रहना ही बन गया है। प्रत्येक मानव भौतिक सुख-साधनों की ओर दौड़ रहा है। ऐसी स्थिति में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों यथा मनुस्मृति आदि में दिए गए मूल विषय-वस्तु को ध्यान से समझना आवश्यक हो जाता है। कोई भी धर्मशास्त्र यह नहीं कहता कि उसमें सुबद्ध नियमों को सभी कालों में अपनाया जाए। हाँ, इतना अवश्य संकेत करता है कि सामाजिक स्थितियों के डावा डोल होने पर किसी धर्मशास्त्र का बनना और अपनाया जाना अत्यावश्यक है। आज भी हमें एक धर्मसंहिता की आवश्यकता है। मनुस्मृति में धर्म के चार लक्षण बताये गये हैं— वेद, स्मृति, सदाचार तथा आत्मतुष्टि। ये लक्षण सभी युगों में मान्य हैं। आज भी यदि इनको अपनाया जाए जो विश्व की अनेक समस्यायें स्वयं ही सुलझ जाएँगी। वर्तमान कालीन संस्कृति के सन्दर्भ में मनुस्मृति में सभी पक्षों पर विचार विमर्श किया गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि हम अपने धर्मग्रन्थों को भुलाकर कभी-भी विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकते हैं। अपेक्षित परिवर्तन तो सर्वदा मान्य होते हैं और इन्हीं परिवर्तनों से संजोकर हमें अपने धर्मग्रन्थों में से श्रेष्ठ को ग्रहण करना होगा और इसी में आधुनिक मानव जाति का कल्याण निहित है।

बन्दना सिंह

विभागाध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
डी० एस० एन० पी०जी० कॉलेज,
उन्नाव

मुख्य शब्द : भारतीय संस्कृति, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र
प्रस्तावना

‘संस्कृति’ शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक/कृ से क्तिन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है ‘संस्कृत आचरण से सम्पन्न’। “सम्यक् क्रियते इति संस्कारः” और इन्हीं सोलह संस्कारों से युक्त है हमारी हिन्दू संस्कृति। ‘संस्कृति’ का अर्थ वह शिक्षा-दीक्षा है जिससे मनुष्य अपनी ‘प्रकृति’ से परिमार्जित होकर उन्नति की ओर अग्रसर हो तथा ‘विकृति’ से बचा रह सके। भारतीय संस्कृति में मानव मात्र के लिए सत्य, शिव और सुन्दर का सन्देश है।

मनन करने का विषय है कि आधुनिक भारत की संस्कृति व्यक्तिगत संस्कृति बनती जा रही है जिसका मुख्य लक्ष्य सांसारिक सुख-वैभव का आनन्द उठाना तथा इन्द्रिय संयम को तिरस्कृत कर स्त्री, सुरा और सम्पत्ति में खोये रहना ही बन गया है। प्रत्येक मानव भौतिक सुख साधनों की ओर दौड़ रहा है। यहाँ तक की आधुनिक शिक्षण पद्धति भी धनपरक बनती जा रही है। जहाँ आध्यात्मिक उत्थान के लिए कोई स्थान शेष नहीं दृष्टिगत होता है। आज हमारे मन में गुरु, माता, पिता, अग्रज और अनुज किसी के प्रति भी कर्तव्य का बोध नहीं है। प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की सत्ता को हड़पने में लगा है और इसके लिए वह रिश्वत, कर-चोरी, कृतघ्नता जैसे कार्यों को अपनाने में भी नहीं चूकता। स्वदेश प्रेम की बात छोड़िये मानव तो अपने पड़ोसी के प्रति भी अपना कर्तव्य नहीं जानता। स्वार्थयुक्त मानव के लिए कार्यनिष्ठा, राष्ट्रीयता, स्वाभिमान, दैव-भय, गुरु-क्रोध आदि अनर्थक सिद्ध हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति का मूल ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ का भाव स्वप्न की भाँति प्रतीत होता है। मानव मूल को जानने की इच्छा नहीं करता तो उसके लिए कर्तव्य दूर की बात है। इसके विपरीत प्रकृति-प्रदत्त ऊर्जाओं का दुष्प्रयोग करता जा रहा है। ऐसी स्थिति में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों यथा मनुस्मृति आदि में दिए गए मूल विषय-वस्तु को ध्यान में समझना आवश्यक हो जाता है।

वर्तमान कालीन संस्कृति के सन्दर्भ में मनुस्मृति की प्रासंगिकता के विषय में कुछ शुभचिन्तक मननशील विद्वान् आगे आये और समाज के ढाँचे में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें। मनुस्मृति में धर्म जिज्ञासा महर्षियों के मन में उठती है क्योंकि परिवर्तन लाने वाली आत्माएँ सामान्य नहीं हुआ करतीं। आज हमें मनु जैसा स्थितप्रज्ञ पथप्रदर्शक चाहिए तथा महर्षियों के सदृश उस प्रदर्शित पथ का अनुकर्ता चाहिए। इन सबके अतिरिक्त चाहिए एक विशेष अनुशासन जो सबके द्वारा पालनीय हो। कोई भी धर्मशास्त्र यह नहीं कहता कि उसमें सुबद्ध नियमों को सभी कालों में अपनाया जाए। हाँ, इतना अवश्य संकेत करता है कि सामाजिक स्थितियों के डावाडोल होने पर किसी धर्मशास्त्र का बनना और अपनाया जाना अत्यावश्यक है। आज भी हमें एक धर्मसंहिता की आवश्यकता है।

उद्देश्य

इस शोध प्रपत्र का उद्देश्य वर्तमान कालीन संस्कृति में मनुस्मृति की प्रासंगिकता का अध्ययन करना है।

मनुस्मृति में वर्णित धर्मव्यवस्था अथवा वर्णव्यवस्था अथवा अर्थव्यवस्था पर तिरस्कार पूर्ण ढंग से ऊंगली उठाना कोई कठिन कार्य नहीं है परन्तु मनु के प्रशंसकों को मनुवादी कहने वाली पुण्यात्माएँ कम से कम यह तो समझने का प्रयत्न करें कि मनुस्मृति एक विशेष काल तथा विशेष परिस्थितियों में लिखा गया धर्मशास्त्र है, जिसका प्रत्येक नियम बदलते हुए समय में अनुसरणीय नहीं है। हमें तो मनुशास्त्र अथवा किसी भी धर्मशास्त्र से ग्राह्य ही ग्रहण करना है सर्वस्य नहीं। जरा सोंचिए क्या ईस्वी सन् 1950 में बने भारत के संविधान में कोई संशोधन नहीं हुआ? यदि 65 वर्ष के इस अल्पकाल में संविधान में संशोधन हुए हैं तो 200 ईस्वी सन्-200 ईसा पूर्व में रचित मनुस्मृति को ज्यों का त्यों अपनाने का विचार मन को कैसे जँच सकता है? परिवर्तित परिस्थितियों में संविधान में परिवर्तन अपेक्षित होते हैं और इस परिवर्तनशील विश्व में परिवर्तन भी अपेक्षित हैं। पुनश्च, मनु ने जो भी कुछ मनशास्त्र में लिखा वह कोई मनगढ़ंत अथवा कल्पनायुक्त नहीं है। प्रत्युत मनु ने सब स्थितियों में वेदों को आधाररूप में रखा है :-

‘यः कश्चिद् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।’¹

‘वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं तु मनोः स्मृतम्।।’²

पुनश्च वेदों को हम चाहे ब्रह्मा द्वारा रचित मानें अथवा दिव्यात्मा ऋषियों द्वारा दृष्ट एवं रचित मानें, सत्य तो यही है कि ये सामान्य मानव द्वारा रचित नहीं हैं। अतः सम्यगरूपेण सत्य को स्थापित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि आज भी हमें वेदों पर आधृत धर्मशास्त्रों एवं धर्मसंहिताओं के अध्ययन की आवश्यकता है।

मनुस्मृति में धर्म के चार लक्षण बताए गए हैं। वे हैं— वेद, स्मृति, सदाचार तथा आत्मतुष्टि।

‘वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।’³

मनु द्वारा उक्त ये धर्मलक्षण तो सभी युगों में मान्य हैं। आज भी यदि इनको अपनाया जाए तो विश्व की अनेक समस्याएँ स्वयं ही सुलझ जाएँगी।

‘वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिषीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनः तुष्टिरेव च।।’⁴

सर्वप्रथम यहाँ वर्णव्यवस्था से सम्बद्ध विषय उठाना चाहूँगी। हमारे दैनिक समाचार पत्र दिन-प्रतिदिन शूद्र और मनुवादी इन दो शब्दों को छापते हैं। कहा जाता है कि मनु ने वर्ण-व्यवस्था बनाई और शूद्रों को बनाने में मनु का ही हाथ है। ऋग्वेद का पूरुष सूक्त कहता है कि ब्राह्मण विराट् पूरुष का मुख था, क्षत्रिय बाहु थे, वैश्य उरु थे तथा पैरों से शूद्र पैदा हुआ। यदि वर्ण बनाये जाते तो ‘अजायत्’ पद का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के साथ भी होता परन्तु मन्त्र में इस पद का प्रयोग केवल मात्रा शूद्र के साथ ही है। कारण स्पष्ट है कि अध्ययन-अध्यापन, रक्षण तथा पालन कर्मों में जो मानव अपने को सिद्ध न कर पाया वह ‘शूद्र’ बन गया।

‘ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उर यदस्य वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।’⁵

इस प्रकार मनु वर्ण व्यवस्था के लिए कैसे दोषी हो सकता है? उसने तो अध्ययन पर बल दिया। प्रत्येक बालक को पढ़ने के लिए प्रेरित किया। प्रत्येक माता-पिता को समझाया कि वह पाँच वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष तक बालक को शिक्षा के लिए गुरु के पास भेजें।⁶ इस पर ध्यान न देने वाले बालक को उसने सावित्री पतित कहा। मनु ने ऐसे बालक को शूद्र कहा क्योंकि वह न तो अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन कर सकता था, न ही वह देश की सीमाओं की रक्षा कर सकता था और न ही व्यापार आदि। यह व्यक्ति जीविकार्जन के लिए कुछ तो करता। ऐसी स्थिति में कोई भी धर्म संहिताकार उसे इन तीन वर्णों की संगति में सेवाभाव से रहने के लिए कहता। दूसरे शब्दों में तो मनु का समाज पर यह एक उपकार है कि उसने अन्य तीन वर्णों के व्यक्तियों को अपनी जीविका का भाग इस व्यक्ति को आंशिकरूपेण बांटने का आदेश दिया।

वास्तविकता यह है कि वर्तमान काल में हमारा जीवन संस्कारविहीन है। पैदा होने पर, विवाह होने पर और मरने पर तो संस्कार किये जाते हैं परन्तु संस्कारों का स्वरूप यहाँ भी दयनीय ही है। समयाभाव का कारण देकर प्रत्येक संस्कार की शुद्धता को दूषित कर दिया गया है। न तो विवाह संस्कार में पूरा समय बैठने के लिए वर के पास है और न ही मरणसंस्कार में तेरह दिन की शुद्धि के लिए मृत व्यक्ति के सम्बन्धी के पास धैर्य। ऐसी स्थिति में संस्कार से अर्जित फल के रूप में पुण्यप्राप्ति की आशा क्यों? प्रत्येक युवक समस्त क्रिया-कलापों को एक घण्टे में समाप्त करवाना चाहता है, जिसके फलस्वरूप मन्त्रों का प्रभाव पूर्णरूपेण नहीं हो पाता है। विद्वान् इन सबका प्रभाव आगामिनी सन्तानों पर भी मानते हैं। प्राचीन पद्धति से उबटन लगाने की परम्परा को आज वीको-टरमरिक-ब्रीम की ट्यूब में बन्द कर दिया गया है। मृत्युकाल में सूतक-काल को आज व्यक्ति मानता ही नहीं है। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन संस्कारों के विधि-विधानों में हो रही अवनति प्रदूषण का एक मुख्य कारण बन रही है, जिसे मनुष्य आज नहीं समझ पा रहा है।

आज के समय का सबसे घातक प्रहार शिक्षा पद्धति पर हो रहा है। प्रत्येक पद्धति में गुण-दोष तो हुआ ही करते हैं परन्तु शिक्षा पद्धति में पाठक को असन्तुष्ट छोड़ देने का दोष तो अक्षम्य है और सम्पूर्ण विश्व के लिए घातक है। किसी भी देश की संस्कृति के पतन का मुख्य कारण होता है मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा का अपमान तथा राष्ट्रीय-भावना का अभाव। विदेशी भाषा का प्रारम्भ से ही अध्ययन करने वाला मनुष्य विदेश को जानने में ही उत्सुक रहता है और वह अपने देश में ही विदेशी हो जाता है। पुनश्च बालक की रुचि पर ध्यान न देना भी हमारी संस्कृति के अधःपतन का कारण है। मनु के अनुसार पिता को बालक के पाँच से आठ वर्ष तक ही उसकी रुचि पर ध्यान देना चाहिये।⁷ आज पिता के पास समय का अभाव रहता है। धनान्ध होकर वह शिक्षा को भी धन से खरीदना चाहता है। ऐसी स्थिति में चारित्रिक मूल्यों में ह्रास को रोकना कहाँ तक सम्भव है। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि गुरु-शिष्य की रुचि का ध्यान रखता था। यही कारण है कि शिष्य किसी न किसी तरीके से उसे गुरु को व्यक्त भी करता था। यथा दीर्घायु का इच्छुक ब्रह्मचारी पूर्व की ओर मुख करके भोजन करें, यश का इच्छुक दक्षिण की ओर, लक्ष्मी का इच्छुक पश्चिम की ओर और ऋत् का इच्छुक उत्तर की ओर मुख करके भोजन करें :-

“आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यषस्यं दक्षिणामुखः ।

श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥”⁸

शिक्षा प्राप्ति कठोर तप था। उसमें इच्छाओं के लिए कोई स्थान नहीं था। भिक्षा में लाए गए भोजन को वह गुरु को अर्पण करने के उपरान्त ही खाता था। भोजन को देखकर प्रसन्न होना, उसकी पूजा करना उसे सिखाया जाता था। एकाग्रचित्त बैठकर इन्द्रियों को वश में करके ही वह प्रसन्न मन से भोजन करता था।⁹ आज का बालक तो भोजन की आलोचना करने में गर्व महसूस करता है। वह भोजन से पूर्व हाथ धोने की पद्धति को प्राचीन समझकर उसे तिरस्कृत करता है, इन्द्रिय संयम अथवा एकाग्रचित्तता का अभाव होता जा रहा है। आधुनिक विद्वान्, गुरुकुल-पद्धति को प्राचीन कहकर उसे पिछड़ेपन की निशानी मानते हैं। परन्तु आधुनिक शिक्षा में नवीनतम से नवीनतम तरीकों के प्रयोग क्या हमें संयमित रहने के लिए मना करते हैं? क्या आज पिता अपने पुत्र को आज्ञाकारी और सत्पथगामी नहीं देखना चाहता? यदि हमारी अपेक्षाएँ पुरानी ही हैं तो फिर धर्मशास्त्रों को अपनाने में हम पिछड़ापन क्यों अनुभव करते हैं। किसी भी खाद्य का सौन्दर्य उसको परोसने के ढंग से द्विगुणित हो जाता है। ठीक यही बात भारतीय शास्त्रों के सम्बन्ध में है। धर्मग्रन्थों में निहित नियमों को आज के परिप्रेक्ष्य में हमें इस तरह से रखना होगा कि जनसामान्य उसके मूल्य को समझ पाए। तब वह नियम, अनुशासन तथा प्रायश्चित्तों की पृष्ठभूमि को समझ पाएगा।

मनु के द्वारा वर्णित आश्रमव्यवस्था अपने में बहुत महत्वपूर्ण है। आज अधिकांशतः गृहस्थ जीवन जो अशान्त है, उसके मुख्य कारण हैं :-

1. विदेशी सभयता का अनुसरण करके स्त्री-पुरुष में समानता के भाव की प्रतिस्पर्धा।

2. पति-पत्नी दोनों का स्वावलम्बी होना।
3. संयुक्त परिवारों का अभाव।
4. विवाह के लिए चयन करने में स्वेच्छा को प्राथम्य देना।

संस्कृति और सभयता में बिखराव न आये, इस दृष्टि से मनु ने सवर्ण के साथ विवाह करने पर बल दिया परन्तु ‘स्त्रीरत्न’ के साथ कदाचिद् विवाह का निषेध नहीं है, चाहे यह स्त्रीरत्न किसी भी वर्ण से सम्बद्ध क्यों न हो? दूसरे शब्दों में गृहस्थ जीवन का सुख स्त्री के गुणों पर निर्भर करता है। विवाह काल में धन लेने-देने का सर्वथा निषेध है। स्त्री की प्रसन्नता में गृहस्थ जीवन की सफलता है, अतः स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता पर ध्यान देना प्रत्येक सम्बन्धी का कर्तव्य है :-

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षन्ति स्थविरं पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥¹⁰

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवैस्तथा ।

पूज्या भूषयतिव्याध्व बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥¹¹

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रौतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥¹²

पति-पत्नी को प्रसन्न रखे और पत्नी पति को, क्योंकि तब ही घर सुख-समृद्धियों से पूर्ण रहता है।¹³ मनु स्मृति स्त्री-स्वातन्त्र्य की बाधक नहीं। वह संयुक्त परिवार पर बल देती है तथा विवाह सम्बन्ध जोड़ने में पिता, माता, गुरु, अग्रज आदि के अनुभवों को प्राथम्य प्रदान करती है। आज इन सबकी आवश्यकता है और अन्तःकरण में हम सब अनुभव भी करते हैं।

वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों के भी अपने विशेष लाभ हैं। ये दोनों आश्रम वैकल्पिक थे। पुनश्च, पुरुष अकेला भी इन दोनों आश्रमों में रह सकता था। इन आश्रमों का मुख्य प्रयोजन था- आध्यात्मिक चेतना। गृहस्थ के भार को अपने पुत्रों को सौंपकर वह आत्मचिन्तन करना चाहता था। यदि वह भी गृहस्थी बनकर रहे और उसका पुत्र भी और पुनः पुत्र का पुत्र भी तो अव्यवस्था दोष आएगा ही और फिर कलह आदि का जन्म और असन्तोष का साम्राज्य। ऐसी स्थिति में एकाग्रचित्त होकर आत्मचिन्तन अथवा इन्द्रियसंयम कैसे सम्भव हो सकता है।

मनुस्मृति के अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि मनु ने चार की संख्या पर विशेष बल दिया है। सृष्टि-सृजन की प्रक्रिया से लेकर सृष्टि संचालन में चार की कड़ी को देखकर लगा कि आखिर कुछ तो इसका कारण रहा ही होगा। सर्वप्रथम चार की कड़ी से अभिप्राय क्या है?

	1	2	3	4
युग चार हैं	सतयुग	त्रेता	द्वापर	कलि
वर्ण चार हैं	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
कर्म चार हैं	अध्ययन	रक्षण	पालन	शुश्रूषा
क्रियार्ये चार हैं	तप	ज्ञान	यज्ञ	दान
आश्रम चार हैं	सन्यास	वानप्रस्थ	गृहस्थ	ब्रह्मचर्य
प्रमुख अंग चार हैं	मुख	बाहु	उरु	पाद

1. प्रथम श्रेणी पूर्ण संस्कृत, इन्द्रियदमन तथा यम-नियमों से युक्त, इच्छाओं पर संयम। सत्यमेव पूर्ण तप तथा समस्त सृष्टि को शिक्षा देने में संलग्न।
2. द्वितीय श्रेणी में उपर्युक्त गुणों के एक अंश की कमी। विश्व में सक्त और आसक्त की भूमिका निभाता है, यह द्वितीय वर्ग। क्रियान्वयन में रूचि परन्तु निःस्पह भाव से।
3. तृतीय श्रेणी में ऊपर बताये गुणों में दो अंश की न्यूनता रहती है, क्योंकि व्यक्ति अपेक्षाकृत विश्व में आसक्त रहता है। क्रियान्वयन भी उसका प्रमुख कर्तव्य बन जाता है। स्वयं और पर का बोध होते हुए भी स्वयं पर अधिक केन्द्रित रहता है।
4. चौथी श्रेणी में ऊपर वर्णित गुणों का एक अंश ही शेष रहता है क्योंकि ज्ञान का अभाव होता है। पादवत् शुश्रूषा से जीवन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न है। यह शिक्षण की स्थिति है जिसमें पारंगत व्यक्ति अग्रिम श्रेणी के लिए तैयार होता है तथा सृष्टि के प्रति अपने कर्तव्य का बोध करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समस्त विश्व का पारस्परिक सम्बन्ध है, जिसके कारण सर्वस्व जुड़ा हुआ है। सामाजिक संतुलन के लिए इस चार की श्रृंखला को जीवित रखना आवश्यक है।

निष्कर्ष

मनुस्मृति में हर पक्ष को लेकर विचार-विमर्श किया गया है। यह पक्ष राज्यसम्बन्धी भी हो सकता है तथा परलोक सम्बन्धी भी। कहने का अभिप्राय यह है कि हम अपने धर्मग्रन्थों को भुलाकर कभी भी विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकते हैं। अपेक्षित परिवर्तन तो सर्वदा मान्य होते हैं और इन्हीं परिवर्तनों से संजोकर हमें अपने धर्मग्रन्थों में से श्रेष्ठ को ग्रहण करना होगा और इसी में आधुनिक मानव जाति का कल्याण निहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति, 12.7
2. बृ0 स्मृति संस्कार, 13
3. मनुस्मृति, 12.12
4. मनुस्मृति, 2.6
5. ऋग्वेद, 10.90
6. मनुस्मृति, 2.36-38
7. मनुस्मृति, 2.37
8. मनुस्मृति, 2.52
9. मनुस्मृति, 2.53-54
10. मनुस्मृति, 9.31
11. मनुस्मृति, 3.55
12. मनुस्मृति, 3.56
13. मनुस्मृति, 3.57-60